**ओ३म्**

**‘अविद्या दूर करने का एकमात्र उपाय वैदिक साहित्य का स्वाध्याय’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 मनुष्य की आत्मा के अल्पज्ञ होने के कारण इसके साथ अविद्या अनादि काल से जुड़ी हुई है। इसका एक कारण जीवात्मा का एकदेशी, ससीम, राग-द्वेष व जन्म-मरणधर्मा आदि होना भी है। ईश्वर सर्वव्यापक, निराकार, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ का तात्पर्य है कि वह जानने योग्य सब कुछ जानता है। वह जीवों के कर्मों की अपेक्षा से त्रिकालदर्शी है। संसार के सभी विषय वा बातों को वह भली भांति जानता है तथा ऐसी कोई बात नहीं है जो उसके जानने योग्य हो। जीवात्मा अल्पज्ञ होने के कारण अल्प ज्ञानी है और सभी विषयों के यथोचित ज्ञान के लिए उसे ज्ञानदाता गुरू व इसके विकल्प के रूप में सद्ग्रन्थों या सत्साहित्य की आवश्यकता होती है। सद्गुरू वही हो सकता है कि जो स्वयं सद्ज्ञान को प्राप्त हो। इसके लिये उसे समस्त वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन किया हुआ होना चाहिये। सम्प्रति हमें संसार में ऐसा कोई गुरू दिखाई नहीं देता। अपवादस्वरूप कुछ गुरू आर्यसमाज में मिल सकते हैं जिन्होंने वैदिक आर्ष साहित्य को जानने के लिए वैदिक संस्कृत का आर्ष व्याकरण अष्टाध्यायी-महाभाष्य-निरुक्त पद्धति का अध्ययन किया हुआ है। आर्यसमाज ने गुरूकुल खोलकर आर्ष संस्कृत व्याकरण तो बहुत लोगों को पढ़ा दिये परन्तु उसके बाद वैदिक साहित्यान्तर्गत वेदांग, ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदोपांग, उपनिषद, स्मृति, गृह्यसूत्र, आरण्यक ग्रन्थ व इतिहास आदि विषयों के ग्रन्थों का समग्रता से अध्ययन वह नहीं कर पाते, इसलिये उनका ज्ञान भी ऋषि व आप्त पुरूष कोटि का नहीं होता। ऐसे लोग समाज से अविद्या दूर नहीं कर सकते। **महर्षि दयानन्द के जीवन पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि वह वेद एवं वैदिक साहित्य के विचक्षण विद्वान, योगी, आर्ष विद्या के ज्योति-पुंज, ऋषि व सृष्टि के ज्ञान से ज्योतिष्मान थे और उनका सारा प्रयास देश, समाज व विश्व से अविद्या दूर करना ही था। उन्होंने मुख्यतः सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय और वेदभाष्य आदि की रचना का जो महान कार्य किया उसका एकमात्र उद्देश्य संसार से अविद्या दूर करना था। देश व धर्म से ऊपर उठकर सभी को विद्वान बनने और अविद्या दूर करने के लिए महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का नियमित व सतत अध्ययन करना चाहिये। आजकल सभी मतों व सम्प्रदायों के प्रचारक अविद्या से ग्रसित ग्रन्थों के विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों का ही प्रचार कर रहे है, ऐसी स्थिति में संसार से अविद्या दूर होना सम्भव नहीं है।**

 अविद्या क्या है? अविद्या ईश्वर, जीवात्मा, मूल प्रकृति और मनुष्य जीवन के कर्तव्यों व धर्मयुक्त व्यवहारों सम्बन्धी असत्य ज्ञान, मिथ्याज्ञान व मिथ्याविश्वास, अन्धविश्वास, असत्य विचारों-मान्यताओं-सिद्धान्तों को कहते हैं। महाभारत काल के बाद रचित व उत्पन्न अधिकांश सम्प्रदाय व मतों के धार्मिक साहित्य में अविद्याचुक्त वचनों की भरमार व प्रचुरता है। इसी कारण देश व विश्व में अशान्ति उत्पन्न हुई। जीवन में चारित्रिक प्रगति के स्थान पर अवनति हुई। इसी कारण एक ईश्वर के पुत्र-पुत्रियां वा संसार के सभी लोग भाई-बहिन के सम्बन्ध को भूलकर तथा परस्पर प्रेम व सद्भाव का व्यवहार करने के स्थान पर अविद्याग्रस्त मतों के कारण एक दूसरे के विरोधी हो गये। इस अविद्या व इससे उत्पन्न स्वार्थ के कारण ही विधर्मियों ने दूसरे मतों व धर्म के लोगों की हत्या, लूटपाट, चरित्र हनन और धर्मान्तरण कर अपनी संख्या में वृद्धि की। ऐसी अनेक विसंगतियां एवं बुराईयां अविद्या के कारण से हुई हैं। यह अविद्या समाज में कब व क्यों फैली? इसका उत्तर है कि महाभारत युद्ध से जो विनाश हुआ, उससे देश व समाज में ही नहीं सारे विश्व में अव्यवस्था उत्पन्न हुई। ज्ञानी लोगों की कमी व अध्ययन की समुचित व्यवस्था न होने के कारण अविद्या का प्रभाव संसार में बढ़ता रहा। इसके परिणामस्वरूप वेदानुयायियों के जीवन व उनके द्वारा किये जाने वाले यज्ञों में अंहिसायुक्त कृत्यों के स्थान पर निषिद्ध हिंसात्मक कृत्य भी किये जाने लगे। इन अवैदिक कृत्यों का विरोध महात्मा बुद्ध आदि ने अपने समय में किया। उनके व अन्य अग्रणीय पुरूषों के अनुयायियों ने उनके बाद के समय में अपने अपने मत स्थापित करने आरम्भ कर दिये। सभी ने अपने अपने मतों के ग्रन्थों की रचना भी आरम्भ कर दी। पुराणों व अन्य अनेक प्रकार के ग्रन्थ भारत में लिखे गये। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, फलित ज्योतिष, जन्मना जातिवाद, छुआछूत, ऊंच-नीच जैसी नाना प्रकार की कुरीतियां समाज में उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त होने लगीं। वेदों व वैदिक साहित्य का प्रचार लगभग बन्द हो गया।

 इस प्रकार से देश विदेश में अविद्या, अज्ञान व अन्धविश्वास बढ़ते गये। जो व्यक्ति कुछ ज्ञानी हुए उन्होंने अपने अपने मत स्थापित कर दिये जिससे मनुष्य समाज कई मतों व सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। इससे सच्चा धर्म-कर्म समाप्त होकर सम्प्रदायों की सत्यासत्य मिश्रित मान्यताओं के अनुसार मनुष्य का जीवन व्यतीत होने लगा। भारत में अविद्याजन्य इन अन्धविश्वासों के कारण ही देश असंगठित हुआ। विदेशी विधर्मियों के आक्रमण हुए। उन्होंने देश को लूटा, मारकाट की, माताओं एवं बहिनों को दूषित किया, धर्मान्तरण किया आदि दुःखद कार्य हुए। इन अज्ञानयुक्त मत-मतान्तरों के कारण मनुष्य अपने इन दुःखों का कारण समझ ही नहीं पाते थे। ऐसे समय में देश में प्रज्ञाचक्षु गुरू स्वामी विरजानन्द सरस्वती और उनके शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती भी हुए। गुरू विरजानन्द प्रज्ञाचक्षु थे और आर्ष संस्कृत भाषा व व्याकरण के एकमात्र अद्वितीय विद्वान थे जिन्होंने आर्ष व लौकिक संस्कृत व्याकरण के भेद व अन्तर को जाना और आर्ष संस्कृत व्याकरण के महत्व को जानकर उसका अध्यापन व प्रचार किया। वह न केवल संस्कृत व्याकरण के सूर्य थे अपितु उन्होंने वेद एवं वैदिक साहित्य का भी अपनी अद्भुत अपूर्व मेधा बुद्धि से अध्ययन व चिन्तन के द्वारा उनके रहस्यों को जाना व समझा था। उन्हें दयानन्द जी से पूर्व ऐसा कोई शिष्य नहीं मिला था जो उनसे उनके समस्त ज्ञान को जानकर उनकी इच्छानुसार अनार्ष धार्मिक मान्यताओं का विरोध व आर्ष ज्ञान के प्रचार का कार्य करता। सौभाग्य से सन् 1860 में स्वामी दयानन्द सरस्वती शिष्यत्व हेतु उनके पास आये और लगभग 3 वर्ष तक उनके सान्निध्य में रहकर उनसे व्याकरण सहित उनके समस्त शास्त्रीय ज्ञान को ग्रहण किया और गुरु की इच्छा व आज्ञा से लोकोपकारार्थ अविद्या, असत्य-ज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्डों आदि का खण्डन और विद्या, सत्य-ज्ञान, शास्त्रों की सत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों का मण्डन किया। उनका उद्देश्य अविद्या का खण्डन और विद्या का मण्डन व प्रचार ही मुख्य था।

 विद्या व अविद्या को प्रकाश व अन्धकार के उदाहरण से अच्छी प्रकार से जाना जा सकता है। प्रकाश विद्या व ज्ञान का प्रतीक है और अविद्या अन्धकार व अज्ञान का प्रतीक है। जिस प्रकार प्रकाश न होने पर हमारे सभी कार्य व व्यवहार रूक जाते हैं, उसी प्रकार से अज्ञान व अन्धविश्वास अच्छे कार्यों को करने में बाधक होते हैं। संसार के समस्त साहित्य को आध्यात्मिक और सांसारिक दो भागों में बांटा जा सकता है। आध्यात्मिक साहित्य भी आर्ष व अनार्ष दो कोटि में बांटा जा सकता है। आर्ष सहित्य वह है तो वेद के रूप में स्वयं ईश्वर प्रदत्त है और इसके बाद ईश्वर के साक्षात्कर्ता ऋषियों ने वेदों की मान्यताओं व सिद्धान्तों के प्रचार के लिए कुछ विषयों का चयन कर जो सरल संस्कृत भाषा में साहित्य रचा तथा जो पूरी तरह वेद के सिद्धान्तों के अनुकूल है। वेद व वैदिक मान्यताओं के विरोधी व प्रतिकूल मान्यताओं व सिद्धान्तों को अनार्ष होने से स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस तथ्य को पूरी तरह समझ कर महर्षि दयानन्द ने आत्मसात किया था। जो जो वेदानुकूल था उसका उन्होंने प्रचार किया और जो वेदों के विपरीत व प्रतिकूल था उसका खण्डन किया। यह बात समझने की है कि महर्षि दयानन्द ने यदि कभी खण्डन किया तो वह असत्य व अज्ञान का ही किया है। सत्य व ज्ञानयुक्त सभी बातें उन्हें पूर्णतयः मान्य थी और उनका उन्होंने खुलकर प्रचार किया। प्रश्न यह होता है कि क्या अविद्या, असत्य व अज्ञान का खण्डन नहीं होना चाहिये? हर विवेकी मनुष्य यह स्वीकार करता है कि असत्य व अन्धविश्वासों का खण्डन अवश्य होना चाहिये। असत्य के खण्डन का विरोध वही लोग करते हैं जिनके हित असत्य व अज्ञान से जुड़े होते हैं। उनके भोलेभाले अनुयायियों को सत्य व असत्य का अन्तर व लाभ व हानि का पता नहीं होता। वह अपने स्वार्थी गुरूओं का साथ देतें हैं। यही कारण है कि आज भी संसार में असत्य मत, अन्धविश्वास, अविद्या के कार्य सर्वत्र हो रहे हैं जिससे मनुष्यों के सुख में बाधायें पहुंच रही हैं। अतः अविद्या, असत्य, अज्ञान, अन्धविश्वासों, स्वार्थ व द्वेष का निवारण व खण्डन होना ही चाहिये। इन्हें दूर करने का एक ही उपाय है, वह है अविद्या व असत्य का खण्डन और विद्या का प्रचार।

 महर्षि दयानन्द विवेकवान महापुरूष थे। उन्होंने परीक्षा कर पाया था कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और मानव हितकारी सभी सत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों से युक्त है। अतः वेद तो उन्हें स्वीकार थे ही, इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रन्थ में जो बातें वेदानुकूल थी, वह चाहे किसी भी मत की पुस्तक में क्यों न हो, उसे वह स्वीकार करते थे। हां, उन्होंने असत्य मान्यताओं से युक्त अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थों को विष सम्पृक्त अन्न के समान त्याग करने की प्रेरणा की है। **उन्होंने असत्य व अविद्या का खण्डन मानव के सर्वोपरि हित को ध्यान में रखकर किया।** ऐसा न करना वह मनुष्यता के विपरीत मानते थे। अज्ञान, अविद्या, स्वार्थों व अन्धविश्वासों को ढोना पशुतुल्य व्यवहार के समान व इससे भी निम्न कोटि का व्यवहार है। **मननशील होने और असत्य का त्याग कर सत्य के ग्रहण करने के कारण ही प्राणी मनुष्य कहलाता है। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करे। इसी से मनुष्य की व्यक्तिगत, समाज, देश व संसार की उन्नति होती है। सभी मनुष्यों का कर्तव्य वा धर्म है कि वह वैदिक धर्म सम्बन्धी प्राचीन सत्य विद्या के ग्रन्थों एवं महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हुए अपने निजी जीवन व सामाजिक जीवन से अविद्या, असत्य व अन्धविश्वास को दूर करें व दूसरों से भी करावें एवं वेदों व वैदिक मान्यताओं के अनुसार ईश्वर, जीवात्मा व धर्म संबंधी सत्य मान्यताओं को धारण कर आत्मोन्नति व धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की करें।**

**-मन मोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**